लोगुत्तरवित्ती

(लोकोत्तर वृत्ति)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत
आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार :

आचार्य वसुनंदी मुनि

ग्रंथ : लोगुत्तरवित्ती (लोकोत्तर वृत्ति)

मंगल आशीर्वाद : प.पू. सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण : प्रथम 2023

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : सदुपयोग

ISBN : 978-93-94199-84-2

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति रजि.

प्राप्ति स्थान :

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति

ई० 16, सैक्टर 51, नोएडा-201301

मो. 9971548889, 9867557668, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

सम्पादकीय

यथाध्यानबलाद्ध्याता शून्यीकृतस्वविग्रहम्।
ध्येयस्वरूपाविष्टत्वात्तादृक् संपद्यतेस्वयम्॥135॥

तदा तथाविधध्यानसंविति: ध्वस्तकल्पन:।
स: एव परमात्मा स्याद्वैनतेयश्च मन्मथ:॥136॥

—तत्त्वानुशासन

जिस समय ध्याता-पुरुष, ध्यान के बल से अपने शरीर को शून्य बनाकर ध्येय स्वरूप में आविष्ट या प्रविष्ट हो जाने से अपने को तत्सदृश बना लेता है, उस समय उस प्रकार की ध्यान संवित्ति से भेद विकल्प को नष्ट करता हुआ वही परमात्मा, गरुड अथवा कामदेव है।

धर्म, आत्मस्वभाव, ध्यान, ज्ञान, चिंतन, मनन, अनुभूति ये एकार्थवाची हैं। आत्मपरिणामों की स्थिरतापूर्वक सम्यक् अतीन्द्रिय आनंद की उपलब्धि हेतु किया गया आत्मपुरुषार्थ ही धर्मध्यान कहलाता है। जिस प्रकार जल, वस्त्र के मालिन्य को दूर कर देता है उसी प्रकार ध्यानरूपी जल, आत्मा के कर्मरूपी मालिन्य को दूर कर उसे निर्मल बना देता है। ध्यान में ही वह अभूतपूर्व शक्ति होती है जो अग्नि की भाँति करोड़ों वर्षों के संचित शुभाशुभ कर्मों को अंतर्मुहूर्त में जला देती है। धर्मध्यान जीव का परम मित्र है जिसकी प्राप्ति रत्नाकर में प्रच्छन्न रत्नों की प्राप्ति के समान दुर्लभ होती है। धर्मध्यान व्यक्ति को न केवल शारीरिक व मानसिक स्वस्थता प्रदान करता है अपितु उसमें आध्यात्मिक शक्तियों का प्रादुर्भाव भी करता है। जिस प्रकार सिस्टम में इनपुट-आउटपुट होता है। इनपुट से परिवर्तन लाकर आउटपुट को नियंत्रित किया जा सकता है इसी प्रकार धर्मध्यान को इनपुट मानें तो कर्मास्रव को मंदतम और निर्जरा को अधिकतम रूप में नियंत्रित किया जा सकता है।

होम्योपैथिक मेडिसिन्स की एक पुस्तक में सर्वप्रथम रोगों के कारण निबद्ध थे और उसमें सबसे पहला कारण था–जीव के अप्रशस्त भाव। जीव के अप्रशस्त भाव वा प्रवृत्तियाँ, मानसिक वृत्तियाँ अशुभ कर्मास्रव में कारण हैं। जो पाप कर्म दु:ख, रोगादि के रूप में फलित होते हैं। दूसरा–व्यक्ति के जैसे भाव होते हैं वैसे हार्मोन्स अंत:ग्रंथियों से स्रवित होते हैं। सिरोटोनिन, एंडोर्फिन, ऑक्सीटोन व डोपमाइन ये हॉर्मोन्स व्यक्ति की सेहत, मूड आदि को अच्छा रखने के लिए बहुत आवश्यक हैं। यदि व्यक्ति के भाव अप्रशस्त, विचार नकारात्मक वा तनावादि हो तो इन हार्मोन्स की कमी तुरंत आ जाती है, जिससे व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक दोनों स्वास्थ्य गिरते चले जाते हैं। इनको बूस्टिड रखने में धर्मध्यान की महत्वपूर्ण भूमिका है। धर्मध्यान के साथ समय व्यतीत करने वाला ही तत्त्वज्ञानी हो सकता है और तत्त्वज्ञानी कभी भी दु:खी नहीं होता। आचार्य भगवन् श्री वादीभसिंह सूरी ने कहा है–

तत्त्वज्ञानं हि जीवानां लोकद्वये सुखावहम्॥

तत्त्वज्ञानी को दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है।

यही कारण है सुख, शांति, आरोग्यादि हेतु आज पश्चिमी देशों में लोग आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रहे हैं और वह आध्यात्मिकता धर्मध्यान से ही संभव है।

आज इस पंचमकाल में उत्कृष्ट धर्मध्यान योगियों के ही प्राप्त होता है। उन साधु-संत, मुनि, दिगंबर, निर्ग्रन्थों की वृत्ति अलौकिक होती है। सामान्य प्राणियों के जीवन से उनका जीवन पृथक् व विशिष्ट होता है। आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी ने भी कहा है–**'मुनीनामलौकिकी वृत्ति:'** मुनियों की वृत्ति, जीवन शैली अलौकिक होती है।

प्रस्तुत ग्रंथ **''लोगुत्तर-वित्ती''** (लोकोत्तरवृत्ति) परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित

वृहद् अर्थ को समाहित किए लघुकाय ग्रंथ है। यह ग्रंथ 93 गाथाओं में लिपिबद्ध है। इस ग्रंथ में शुभाशुभ भाव व ध्यानादि का कथन है। इसमें योगियों की लोकोत्तर वृत्ति वा अलौकिक प्रवृत्ति का वर्णन है। इस ग्रंथ का अध्ययन निःसंदेह भावों को विशुद्ध व धर्मध्यान में अनुरक्त करने में समर्थ कारण होगा।

आप सभी पाठकगण इस ग्रंथ का पठन, श्रवण, चिंतन, मनन कर अवश्य अध्यात्म रस की गंध लेने में समर्थ हो सकेंगे।

आचार्य भगवन् की अविच्छिन्न लेखनी उनकी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगिता को प्रमाणित करती है। सिद्धांत, अध्यात्म, नय, न्यायादि के कठिन विषयों पर वा बहुजनोपयोगी विषयों पर उनकी लेखनी सदैव प्रवर्तमान रहती है। प्रत्येक सम्यक्दृष्टि, स्वाध्याय प्रेमी, आसन्नभव्य श्रावक, शिष्ट व सभ्य समाज एवं धर्म कार्यों की अनुमोदना करने वाला देश वा राष्ट्र युगों-युगों तक भी उनके द्वारा प्रदान किए गए श्रुत को विस्मृत न कर सकेगा एवं शताब्दियाँ उनके प्रति अपना कृतज्ञ भाव अवश्य व्यक्त करेंगी।

प्रस्तुत ग्रंथ **'लोगुत्तरवित्ती'** अर्थात् 'लोकोत्तरवृत्ति' के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, नीर-क्षीर विवेकी हंसवत्, गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन कर स्वकीय परिणामों को निर्मल बनाने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। ऐसा करने से हमारे चित्त को भी परम तोष, हर्ष, आनंद व शांति का अनुभव होगा। जन-जन के हृदयांबुज पर विराजमान परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के संयम, तप, ज्ञान, ध्यान व साधना का सौरभ युगों-युगों तक विश्व को सुरभित करता रहे। परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित विनम्र कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

'जैनम् जयतु शासनम्'

-आर्यिका वर्धस्व नंदनी

अनुक्रमणिका

1. मंगलाचरण 9
2. ग्रंथ कथन प्रतिज्ञा..... 9
3. लौकिक-अलौकिक वृत्ति..... 10
4. जीव स्वरूप..... 10
5. अशुभ कर्मास्रव हेतु..... 10
6. पापकर्म..... 11
7. अशुभ कर्म फल..... 11
8. शुभ भाव के स्वामी..... 11
9. शुभ भाव क्या?..... 12
10. शुभ भाव फल..... 12
11. शुभाशुभ भाव मोक्ष का कारण नहीं..... 13
12. दैव व पुरुषार्थ..... 13
13. परमज्ञानी कौन?..... 14
14. त्रियोग सदुपयोग..... 14
15. पुण्य महिमा..... 14
16. संकल्प शक्ति..... 14
17. सराग संकल्प भेद..... 15
18. पाप कारक-अशुभ संकल्प..... 15
19. अशुभ-शुभ भाव निवृत्ति..... 15
20. शुभ-अशुभ-शुद्ध भाव..... 16
21. ज्ञान ही आत्मा है..... 16
22. शब्द, ज्ञान नहीं..... 16
23. अशुभ ध्यान कैसे?..... 16
24. गृहस्थों के ध्यान नहीं..... 17
25. देशव्रतियों के निर्जरा..... 17

26. मुनिराज के ध्यान..... 17
27. निर्विकल्प धर्मध्यान कहाँ?..... 15
28. शुक्लध्यान कहाँ?..... 18
29. आर्त्त व रौद्रध्यान भेद..... 18
30. शुक्लध्यान भेद..... 18
31. धर्मध्यान भेद व स्वामी..... 19
32. धर्मध्यान माहात्म्य..... 19
33. मिथ्यादृष्टि की मान्यता..... 20
34. सम्यग्दृष्टि की मान्यता..... 20
35. धर्मध्यान के चार भेद..... 20
36. पदस्थ ध्यान..... 20
37. पिंडस्थ ध्यान..... 21
38. रूपस्थ ध्यान..... 21
39. रूपातीत ध्यान..... 21
40. योगी का कर्त्तव्य..... 22
41. वह मोक्षमार्गी नहीं..... 22
42. अशुभ निमित्त त्याग..... 22
43. सेवा कब गुणवर्द्धक?..... 23
44. सेवा कैसे?..... 23
45. जिनशासन प्रभावना आवश्यक..... 23
46. आत्म प्रभावना..... 23
47. प्रभावना कैसे?..... 24
48. यथार्थ प्रभावना..... 24
49. मात्र चिह्न कल्याण के हेतु नहीं..... 24
50. कर्त्तव्य चिंतन..... 24
51. धर्म घातक..... 25

52. पाप व दु:ख वर्धक 25
53. चैत्य भक्ति 25
54. गुरुभक्ति माहात्म्य 26
55. स्वाध्याय प्रेरणा 26
56. आत्मशुद्धि कैसे? 26
57. सद्धर्म रसायन 26
58. देव-शास्त्र-गुरु व धर्म स्वरूप 27
59. सिद्ध पद का पात्र 27
60. आत्मध्यान प्रेरणा 27
61. आत्मध्यान की सफलता 28
62. प्रभात कहाँ? 28
63. योगी का शत्रु 28
64. चिन्ता के दुष्परिणाम 28
65. भावनाओं का चिन्तन 29
66. कर्त्ता ही भोक्ता 29
67. योगाभ्यास 29
68. धर्मध्यान में स्थिरता कैसे 30
69. विषकुंभ 30
70. धर्मध्यान के हेतु 30
71. ध्यान स्थान 30
72. ग्रंथ का हेतु 31
73. अंतिम मंगलाचरण 31
74. ग्रंथकार की लघुता 32
75. ग्रंथ प्रशस्ति 32

आचार्य वसुनंदी मुनि विरचित

लोगुत्तरवित्ती

(लोकोत्तर वृत्ति)

मंगलाचरण

सव्वसुद्ध-सिद्धाणं, णिरंजणाण अणंतणाणजुदाण।
णमो सव्वगुणमयाण, लोयग्गठिद-अकलंकाणं॥1॥

निरंजन (कर्म रूपी अंजन से रहित), अनंत ज्ञान से युक्त, सर्व गुणमय, लोक के अग्रभाग पर स्थित, अकलंक (सर्व दोष रूप कलंक से रहित) सभी शुद्ध सिद्धों को नमस्कार हो।

अरिहाइ-पंचगुरुणो, सेसचउदेवा अवि परियंदामि।
सुहभत्तीए णिच्चं, णस्सेदुं तिविह-कम्माइं॥2॥

श्री अरिहंत आदि पंचगुरु अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु एवं शेष चार देव अर्थात् जिनधर्म, जिनागम जिनचैत्य व जिनचैत्यालयों को तीन प्रकार के कर्मों के नाश के लिए शुभ भक्तिपूर्वक नित्य नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथ कथन प्रतिज्ञा

वसुगुणं च वसुभूमिं, पप्पोदुं अजिदजिणं वंदित्ता।
वसुकम्मं खयेदुं दु, वोच्छामि लोगुत्तर-वित्तिं॥3॥

सिद्धों के अष्ट गुण व अष्टभूमि प्राप्त करने एवं अष्ट कर्मों के क्षय के लिए श्री अजितनाथ प्रभु की वंदना करके मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) लोकोत्तर-वृत्ति नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

लौकिक-अलौकिक वृत्ति

तित्थयर-अणुत्तर-जोगीण अण्णकेवलि-महाजोगीण।
संसारीण लोगिगा, जोगीणं लोगिदर-वित्ती॥4॥

तीर्थंकर अनुत्तर योगी हैं, अन्य केवली महायोगी हैं एवं अन्य साधु योगी हैं इन सबकी अलौकिक वृत्ति होती है जबकि संसारियों की लौकिक वृत्ति होती है।

जीव स्वरूप

पज्जट्ठियेण तणूइ, दव्वट्ठियेणं लोयपमाणो य।
जीवो अचल-चल-उहय-पदेस-जुदो सीलोड्ढगई॥5॥

जीव पर्यायार्थिक नय से देह प्रमाण है व द्रव्यार्थिक नय से लोक प्रमाण है। वह अचल, चल व चलाचल प्रदेशों से युक्त है एवं ऊर्ध्वगमन करना उसका स्वभाव है।

जीवो उवओगमओ, णिच्चो अमुत्तो य कत्ता भोत्ता।
संसारि-सकम्मा णिक्कम्मा-मुत्ता परमझेया॥6॥

जीव उपयोगमय, नित्य, अमूर्तिक, कर्त्ता व भोक्ता है। संसारी जीव कर्म से सहित हैं एवं मुक्त जीव कर्म से रहित हैं और ये मुक्त जीव ही परम ध्येय हैं अर्थात् योगियों को सिद्धों का ध्यान करना चाहिए।

अशुभ कर्मास्रव हेतु

राय-दोस-मिच्छत्ताविरदि-पमाद-कसायेहि अज्जंति।
जीवा असुहकम्माणि, अहण्णिसं असुहजोगेहिं॥7॥

जीव राग, द्वेष, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व अशुभ योगों से निरंतर अशुभ कर्मों का आस्रव करता है।

पापकर्म

रायोव्व मोहणीयं, महापावकम्मं बेआवरणं।
विग्घमसादासुहाउ-णाम - णीयगोद - असुहाइं॥8॥

कर्मों में मोहनीय राजा के समान है, वह महा पापकर्म है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम व नीचगोत्र ये सभी अप्रशस्त, अशुभ व पाप कर्म हैं।

अशुभ कर्म फल

असुहकम्मोदयेणं पावंते असुहफलं णियमादो।
अणिट्ठजोगत्तयं च, पोग्गला अवि सया अणिट्ठा॥9॥

अशुभ कर्म के उदय से जीव नियम से अशुभ फल प्राप्त करते हैं। अनिष्टकारी मन, वचन व काय एवं अनिष्ट पुद्गल भी अशुभ कर्म के उदय से ही प्राप्त होते हैं।

तेणं इट्ठ-विओगज-अणिट्ठ-संयोगज-वेयण-दुहाणि।
माणसदुहं च कक्कस-वयणं कुणिदाणं लहंते॥10॥

उस अशुभ कर्म के उदय से जीव इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोग से उत्पन्न वेदना, दुःख, मानसिक दुःख, कर्कश वचन व कुनिदान रूप भाव को प्राप्त करते हैं।

शुभ भाव के स्वामी

सम्माइट्ठि - णाणीण, देस - महव्वदि - मंदकसायाणं।
उहयसेणीगदाणं, सजोगाजोगीण सुभावा॥11॥

सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, देशव्रती, महाव्रती मंदकषायी, उभय श्रेणी गत अर्थात् उपशम श्रेणी चढ़ने वाले उपशामक व क्षायिक

श्रेणी चढ़ने वाले क्षपक, सयोग केवली व अयोग केवलियों के शुभ भाव होते हैं।

शुभ भाव क्या?

जेहिं भावेहि पुण्णबंधो ते सुहभावा णादव्वा।
कम्मजुदादो वि सुहा, अजोगीण सुद्धा सिद्धाण॥12॥

जिन भावों से पुण्य का बंध होता है वे शुभ भाव जानने चाहिए। कर्म युक्त होने से अयोगकेवलियों के शुभ भाव कहे हैं एवं सिद्धों के सदैव शुद्ध भाव होते हैं।

शुभ भाव फल

सुहभावेहि लहंते, इट्ठवत्थुपदायगं बहुपुण्णं।
माणुसभव-मुच्चकुलं, सुसंगदि-देस-सुसक्कारा॥13॥

सादं णाणादीणं, वर-खओवसमं सम्मत्त-णाणं।
वेरग्गं विणयं वच्छलं जिणभत्ति-गुरुवासणा॥14॥ (जुम्मं)

शुभ भावों से जीव इष्ट वस्तु प्रदान करने वाले बहुत पुण्य को प्राप्त करते हैं। वे शुभ भावों से मनुष्यभव, उच्चकुल, सुसंगति, अच्छा देश व सुसंस्कार, साता वेदनीय, ज्ञानादि का श्रेष्ठ क्षयोपशम, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, विनय, वात्सल्य, जिनभक्ति व गुरूपासना रूप भाव को प्राप्त करते हैं।

तित्थजत्तं तह तच्च-चिंतणं सुहेणं चित्त-थेज्जं च।
लहंति सज्झाणं सय, सुहभावजणिद-सुपुण्णेणं॥15॥

शुभ भाव जनित पुण्य से जीव तीर्थयात्रा, तत्त्वचिंतन, सुख पूर्वक चित्त की स्थिरता व सद्ध्यान को प्राप्त करते हैं।

तेण सुगिहत्थो देस-महव्वदी अपमत्तुवसामगा य।
खवगो अरिहंतो अवि, पुण्णे णट्ठे सुद्धसिद्धो॥16॥

उस शुभ भाव जनित पुण्य से जीव सद्गृहस्थ, देशव्रती, महाव्रती, अप्रमत्त, उपशामक, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होने वाला क्षपक और अरिहंत भी होता है। तथा पुण्य के नष्ट होने पर शुद्ध सिद्ध होता है।

शुभाशुभ भाव मोक्ष का कारण नहीं

सुहासुहभावेहि णो, मोक्खो हु संभवो कस्स वि कया वि।
उहयभावेसु खयेसु, लहदि सगपरमसुद्ध-भावं॥17॥

शुभ व अशुभ भावों से किसी को कभी भी मोक्ष संभव नहीं है। दोनों शुभ व अशुभ भावों के क्षय होने पर जीव अपने परम शुद्ध भाव को प्राप्त करता है।

दैव व पुरुषार्थ

सुपुरिसट्ठेणं विणा, को वि णो समत्थो खयिदुं भावं।
पुव्वसुपुरिसट्ठफलं, वट्टमाणे दइवं णेयं॥18॥

अपने पुरुषार्थ के बिना कोई भी अपने भावों को क्षय करने में समर्थ नहीं होता। पूर्व के सम्यक् पुरुषार्थ का फल वर्तमान में दैव व भाग्य जानना चाहिए।

तेण पावदे इट्ठं वट्टमाणुज्जमो चिअ पुरिसट्ठो।
कायर-मूढा भणंति, दइवेणं लहामो मोक्खं॥19॥

उस सम्यक् पुरुषार्थ से जीव इष्ट पदार्थों को प्राप्त करता है। वर्तमान का उद्यम ही पुरुषार्थ है। कायर व मूर्ख जीव ही कहते हैं कि ''हम भाग्य से मोक्ष प्राप्त करेंगे।''

परमज्ञानी कौन?

परमणाणी य जहत्थ-सद्धावंतो सुधमम्मि जो सो।
पुरिसट्ठं कुणदि सवर-हिदस्स दु आउक्खयपुव्वे॥20॥

जो अपनी आयु के क्षय होने के पूर्व ही स्वपर हित का पुरुषार्थ करता है वह ही सद्धर्म में यथार्थ श्रद्धावान् व परमज्ञानी है।

त्रियोग सदुपयोग

सदुवजोगं करेज्जा, सगधणसाहणाणं च जोगाणं।
दुरुवजोगेणं सम्म-पुरिसट्ठो केरिसो ताणं॥21॥

अपने धन, साधन, योग (मन-वचन व काय) का सदुपयोग करना चाहिए। इनका दुरुपयोग करने से सम्यक् पुरुषार्थ कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

पुण्य महिमा

संवरणिज्जराहिं च, सक्कदि पावेदुं मोक्खं जीवो।
पुण्णोदयेणं विणा, संवरं णिज्जरं करिदुं ण॥22॥

कर्मों के संवर व निर्जरा से ही जीव मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है। पुण्य उदय के बिना कोई भी संवर व निर्जरा करने में समर्थ नहीं होता।

संकल्प शक्ति

जो को अवि संकप्पं, ओग्गहदि लहिदुं वीयरायत्तं।
सो दु आसण्ण-भव्वो, अप्पभवेसु लहदे मोक्खं॥23॥

जो कोई भी वीतरागता प्राप्त करने का संकल्प ग्रहण करता है वह आसन्न भव्य जीव अल्पभवों में मोक्ष प्राप्त करता है।

सराग संकल्प भेद

सुहासुहाण भेयादु, दुविहो सराय-संकप्पो समये।
णिक्कंख-सुसंकप्पो, देदुं खमो गदरायत्तं॥24॥

शुभ व अशुभ के भेद से शास्त्र में सराग संकल्प दो प्रकार का कहा गया है। निःकांक्ष शुभ संकल्प वीतरागता प्रदान करने में समर्थ होता है।

पाप कारक-अशुभ संकल्प

देदि असुह-संकप्पो, दोत्थं असुहाउं रोयं सोगं।
को अह-मज्जदि मणेण, असुहसंकप्पेणं विणा दु॥25॥

अशुभ संकल्प दुर्गति, अशुभ आयु, रोग व शोक प्रदान करता है। अशुभ संकल्प के बिना मन से कौन पाप का अर्जन करता है? अर्थात् जब तक व्यक्ति अशुभ संकल्प न करे तब तक मन से पाप का अर्जन (व भाव) संभव नहीं है।

अशुभ-शुभ भाव निवृत्ति

दव्वट्ठियं पडुच्चा, करेज्ज णिवत्तिं असुहभावाणं।
सुहभावाणं पि पुणो, णिवत्तीइ सम्मपुरिसट्ठं॥26॥

द्रव्यार्थिक नय का आश्रय करके अशुभ भावों की निवृत्ति करनी चाहिए। पुनः शुभ भावों की निवृत्ति के लिए सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए।

थिरचित्तेण तिजोगा, संभालेज्ज असुहणिवत्तीइ पुण।
अध तस्स णिवत्तीए, सुहं पि विहाय लहदु सुद्धं॥27॥

सर्वप्रथम अशुभ भावों की निवृत्ति के लिए चित्त को स्थिर करके तीनों योगों को सम्हालना चाहिए। पुनः उस शुभ की भी निवृत्ति के लिए शुभ को छोड़कर शुद्ध को प्राप्त करना चाहिए।

शुभ-अशुभ-शुद्ध भाव

असुहो होज्ज कुसीलं, सुहो वि सुद्धावेक्खाइ कुसीलं।
संसारीण सुद्धो वि, सुहो सिद्धाण परमसुद्धा॥28॥

अशुभ भाव विभाव है और शुद्ध की अपेक्षा से शुभ भाव भी विभाव है। संसारी प्राणियों का शुद्ध भाव भी शुभ ही जानना चाहिए एवं सिद्धों के परमशुद्ध भाव जानने चाहिए।

ज्ञान ही आत्मा है

अप्पा णाणं भणिदं, णाणं अप्पा जहत्थे मण्णेज्ज।
अप्पं विणा ण णाणं, णाणेण विणा कहं अप्पा॥29॥

आत्मा को ज्ञान कहा गया है। यथार्थ में ज्ञान को ही आत्मा माना जाता है। आत्मा के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना आत्मा किस प्रकार हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

शब्द, ज्ञान नहीं

सद्दा णेव णाणं हु, कारणादो णाणं कहंति के वि।
खओवसम-हेदू सक्का तस्स विड्ढीइ णिमित्तं॥30॥

शब्द, ज्ञान नहीं है। ज्ञान का कारण होने से कुछ लोग शब्द को ज्ञान कहते हैं। वे शब्द ज्ञान के क्षयोपशम के हेतु व उस ज्ञान की वृद्धि में निमित्त होने में समर्थ हैं।

अशुभ ध्यान कैसे?

अइकसायेण पुव्वह-सक्कारेणक्खविसय-पवत्तीइ।
असुहझाणाणि होज्जा, संपइ तियरंजणेणं वा॥31॥

अतिकषाय, पूर्व पाप कर्म के संस्कार एवं इंद्रिय विषयों में प्रवृत्ति से अथवा वर्तमान में तीनों में रंजायमान होने से जीव के अशुभ ध्यान होते हैं।

गृहस्थों के ध्यान नहीं

गेहीण मेत्तं तच्च-चिंतणरूवभावणाणुभावणा।
उवयारेण सुझाणं, सुपुण्ण-बंधस्स कारणं हु॥32॥

गृहस्थों के मात्र तत्त्वचिंतन रूप भावना और अनुभावना होती है। उनके शुभ ध्यान उपचार से ही होता है। एवं वही पुण्य बंध का कारण है।

देशव्रतियों के निर्जरा

संवरेणं संभवो, अइ-पाव - णिज्जरा किंचि वदीणं।
अभावत्तादु मिच्छत्तेग - अविरदि - चदुत्थंताण॥33॥

देशव्रतियों के संवरपूर्वक अति पाप कर्मों की निर्जरा संभव है। क्योंकि उनके मिथ्यात्व, एक अविरति व चतुर्थ गुणस्थान तक जिन प्रकृतियों से कर्मों का आस्रव होता है, उनका अभाव हो जाता है।

मुनिराज के ध्यान

सरागसंजमी महव्वदी, पमत्ता तच्चचिंतणरदा।
कयाइ अट्टज्झाणं, संभवो बहुआ सुधम्मम्मि॥34॥

सरागसंयमी, महाव्रती, तत्त्वचिंतन में रत प्रमत्तविरत मुनिराज अधिकतर धर्मध्यान में रत रहते हैं किंतु कदाचित् आर्तध्यान भी संभव है।

निर्विकल्प धर्मध्यान कहाँ?

वर-णिव्विअप्प-धम्मज्झाणं अपमत्तादु सुहुमंतं च।
कसायसब्भावे णो, मणंति सुक्कं के वि सूरी॥35॥

अप्रमत्तविरत गुणस्थान से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक उत्कृष्ट निर्विकल्प धर्मध्यान होता है। कषाय का सद्भाव होने पर कई आचार्य वहाँ शुक्लध्यान नहीं मानते।

शुक्लध्यान कहाँ?

कसायअभावत्तादु, उवसंतादु अजोगीठाणंतं।
चउसुक्कं कमेण, उवयारेण दुअंतणाणेसुं॥36॥

कषाय का अभाव होने से उपशांत कषाय गुणस्थान से अयोग केवली गुणस्थान तक क्रम से चार शुक्लध्यान जानने चाहिए। अर्थात् ग्यारहवें उपशांतकषाय गुणस्थान में पहला, बारहवें क्षीणमोह में दूसरा, तेरहवें सयोगकेवली में तीसरा व चौदहवें अयोगकेवली में चौथा शुक्लध्यान होता है। अंत के दो (13वें व 14वें) गुणस्थान में ध्यान उपचार से होता है।

आर्त्त व रौद्रध्यान भेद

इट्ठविओगणिट्ठ-संजोगा पीडाचिंतणं णिदाणं।
अट्टं च हिंसा-मुसा-चोरिअ-संगणंदी रुद्दं॥37॥

इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पीड़ाचिंतन व निदान ये चार आर्तध्यान के भेद हैं। हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी व परिग्रहानंदी ये चार रौद्रध्यान के भेद हैं।

शुक्लध्यान भेद

पिथगत्तं वितक्कं च, वीयारं एगत्त-अवीयारं।
सुहुम-किरिय-पडिपादी, विओवरद-किरिया-णिवत्ती॥38॥

पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कअवीचार, सूक्ष्म क्रिया-प्रतिपाती व व्युपरतक्रियानिवृत्ति ये शुक्लध्यान के चार भेद हैं।

धर्मध्यान भेद व स्वामी

आणा-अपाय-विवाग-संठाणविचयं चदुविहं धम्मं।
चदुत्थ-पणम-छट्ठेसु, बे-तिय-चदू कमेण झाणं।।39।।

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय व संस्थानविचय, ये चार प्रकार के धर्मध्यान हैं। चतुर्थ गुणस्थान में धर्मध्यान के दो, पाँचवें गुणस्थान में धर्मध्यान के तीन तथा छठे गुणस्थान में धर्मध्यान के चारों भेद होते हैं।

तस्स अण्णभेया अवि, जीवाजीवलोयहेदु-उवाया।
विरागविचया हेदू-संवरणिज्जराण पुण्णस्स।।40।।

उस धर्मध्यान के अन्य भेद भी हैं—जीवविचय, अजीवविचय, लोकविचय, हेतुविचय, उपायविचय और विरागविचय। धर्मध्यान पुण्य का, संवर का एवं निर्जरा का हेतु है।

धर्मध्यान माहात्म्य

धम्मज्झाणेण असुहकम्माण संकमणं होज्ज सुहेसु।
असुहाण ओकड्ढणं, सुहपइडीण उक्कस्सणं पि।।41।।

धर्मध्यान से अशुभ कर्मों का संक्रमण शुभ में होता है। अशुभ प्रकृतियों का अपकर्षण व शुभ प्रकृतियों का उत्कर्षण भी हो सकता है।

सद्धम्मस्स खलु तिव्व-अणुरायेणं सुहपइडीण तहा।
ठिदी दिग्घाणुभागो, तिव्वो सुहकारणं णियमा।।42।।

सद्धर्म के तीव्र अनुराग से शुभ प्रकृतियों की स्थिति दीर्घ होती है और अनुभाव तीव्र होता है। सद्धर्म नियम से शुभ का कारण है।

मिथ्यादृष्टि की मान्यता

तच्चसरूव-मण्णहा, सरूवं पि जिणसुदमुणि-धम्माणं।
मिच्छाइट्ठी मणंति, अण्णहा किलेसभावेहिं।।43।।

मिथ्यादृष्टि जीव क्लेशभावों से तत्त्व स्वरूप को अन्यथा मानते हैं। जिनदेव, श्रुत, मुनि व धर्म के स्वरूप को अन्यथा मानते हैं।

सम्यग्दृष्टि की मान्यता

सम्माइट्ठी कुणंति, जहरिहेण तच्चचिंतणं मणंति।
पणगुरु-धम्मप्प-समय-आदीण जहत्थ-सरूवं च।।44।।

सम्यग्दृष्टि जीव यथार्थ रूप से तत्वचिंतन करते हैं। वह सम्यग्दृष्टि पंचगुरु, धर्म, आत्मा व शास्त्रादि के यथार्थ स्वरूप को मानते हैं।

धर्मध्यान के चार भेद

धम्मरदा वड्ढंते, विसुद्धिं तच्चचिंतणेण णिच्चं।
पदत्थं पिंडत्थं च, रूवत्थं रूवादीदं हु।।45।।

धर्म में रत जीव नित्य तत्त्वचिंतन से अपनी विशुद्धि वृद्धिंगत करते हैं। पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ व रूपातीत ये चार भी धर्मध्यान के भेद हैं।

पदस्थ ध्यान

ओं अरिह-सिद्धाइरिय-पाढग-साहूण बीयक्खराणं।
परमेट्ठिवायगाणं, चिंतणं झाणं पदत्थं हु।।46।।

ॐ, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, पाठक, साधु का, परमेष्ठी वाचक बीजाक्षरों का चिंतन करना पदस्थ ध्यान है।

पिंडस्थ ध्यान

सिदपहा-विप्फुरंतं, परमोरालियदेहं केवलीव।
णिअयं झाणिज्जेदि, पणधारणाजुद-पिंडत्थं।।47।।

केवली के समान श्वेत किरणों से स्फुरायमान, परमौदारिक देह रूप अपनी आत्मा का जो ध्यान किया जाता है वह पिंडस्थ ध्यान है। यह ध्यान पाँच धारणाओं से युक्त है।

रूपस्थ ध्यान

देहट्ठिद-णियप्पस्स, सुद्धसरूव-चिंतणं दु सगदं च।
अरिह-सरूवगुणाणं, चिंतणं परगद-रूवत्थं।।48।।

देह में स्थित अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप का चिंतन करना स्वगत रूपस्थ ध्यान है। तथा अरिहंत के स्वरूप व गुणों का चिंतन करना परगत रूपस्थ ध्यान है।

रूपातीत ध्यान

सद्देहिं अवत्तं च, वज्जिदं रस-रूव-गंध-फासादु।
सगसंवेदणजोग्गं, देहादीदं गुणपुंजं च।।49।।

ववहारेण सव्वण्हु-सव्वदंसी णिच्छयेण इदरं च।
झाणिज्जदि णिअयं जं, सिद्धोव्व रूवादीदं तं।।50।। (जुम्मं)

रस, रूप, गंध व स्पर्श से रहित, शब्दों के द्वारा अव्यक्त, स्वसंवेदन के योग्य, गुणों की पुंज, देहातीत, व्यवहार से सर्वदर्शी व सर्वज्ञ, निश्चय से आत्मदर्शी व आत्मज्ञ, सिद्धों के समान अपनी आत्मा का जो ध्यान किया जाता है वह रूपातीत ध्यान है।

योगी का कर्त्तव्य

कसायं णोकसायं, विसय-मारंभं संग-मामुयित्तु।
सगसत्तीए जोगी, होज्ज झाण-णाण-तव-लीणा॥51॥

योगियों को कषाय, नोकषाय, विषय, आरंभ व परिग्रह का त्याग कर अपनी शक्ति के अनुसार ज्ञान, ध्यान व तप में लीन होना चाहिए।

सव्वदा बहिरसंगं, अवहेडित्तु सत्तीइ अंतरं वि।
णिवसेज्जा जोगी चिय, धम्मज्झाण-पसत्थ सदणे॥52॥

सर्वदा बाह्य परिग्रह का एवं शक्ति के अनुसार अंतरंग परिग्रह का भी त्याग कर योगी को धर्मध्यान के प्रशस्त भवन में निवास करना चाहिए।

वह मोक्षमार्गी नहीं

जदि वसदि विसयकसाय-संगारंभेहि किलेसेहि मुणी।
सेवदे अणायदणं, तो णिव्वाणमग्गी कहं दु॥53॥

यदि कोई मुनि संक्लेश भावों से विषय-कषाय-परिग्रह व आरंभ में वास करता है अर्थात् उन्हीं में लीन रहता है व अनायतनों का सेवन करता है तो वह मोक्षमार्गी कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता।

अशुभ निमित्त त्याग

सव्व-असुह-णिमित्तं दु, उस्सिक्केज्ज जोगत्तयबलेणं।
गुरुपद-जिणवयण-साहु-संगदि-मप्पज्झाणं कुणदु॥54॥

योगी को योगत्रय (मन, वचन, काय) के बल से सर्व अशुभ निमित्तों को त्याग देना चाहिए। उसे गुरुचरण, जिनवचन व साधुओं की संगति एवं आत्मध्यान करना चाहिए।

सेवा कब गुणवर्द्धक?

समणो दु धम्मलीणो, सिहिलायारि-महव्वदिस्स सेवं।
कुणदि पूयं पसंसं, कहं गुणं वड्ढिदुं सक्को॥55॥

धर्म में लीन जो श्रमण शिथिलाचारी महाव्रती की सेवा, पूजा, प्रशंसा करता है तो वह गुणों की वृद्धि करने में समर्थ कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

सेवा कैसे?

रोगि - सल्लेहणारद - मरणसम्मुह - जदी अणुवज्जेज्जा।
वच्छलोवगूहण - ठिदि - करणेहि विजित्ता दुगुंछं॥56॥

ग्लानि को जीतकर वात्सल्य, उपगूहन व स्थितिकरण के द्वारा रोगी, सल्लेखनारत वा मरण के सन्मुख यतियों की सेवा करनी चाहिए।

जिनशासन प्रभावना आवश्यक

संजमी वि सत्तीए, जिणसासणपहावणं पकुव्वेज्ज।
जिणसासणपहावणा-रहिदा सवरधम्मघादगा॥57॥

संयमी को शक्ति के अनुसार जिनशासन की प्रभावना करनी चाहिए। जिनशासन की प्रभावना से रहित स्वपर धर्म के घातक जानने चाहिए

आत्म प्रभावना

णिव्विअप्पझाणेणं, अप्पपहावण-मेगंते ठाइय।
अपमत्तचरिया वि जिण-पहावणाए वरणिमित्तं॥58॥

सर्वप्रथम एकांत में ठहरकर निर्विकल्प ध्यान के द्वारा आत्म प्रभावना करनी चाहिए। अप्रमत्तचर्या भी जिनशासन की प्रभावना का श्रेष्ठ निमित्त है।

प्रभावना कैसे?

णाणं तवं संजमं, पालिय कुणदु बहिर-पहावणं पुण।
सावया पणोल्लिय महपूयं दाणं करावेज्जा॥59॥

पुनः ज्ञान, तप व संयम का पालन कर बाह्य प्रभावना करनी चाहिए। श्रावकों को प्रेरणा देकर महापूजा व दान कराना चाहिए।

यथार्थ प्रभावना

तहवि सय चिंतेज्ज सग-संजमं विराहिय पहावणा णो।
णिरवज्ज-पहावणा हि, जिणमग्गस्स जहत्था जाण॥60॥

तथापि सदैव चिंतन करना चाहिए कि अपने संयम की विराधना कर कभी प्रभावना नहीं हो सकती। निरवद्य प्रभावना ही जिनमार्ग की यथार्थ प्रभावना जानो।

मात्र चिह्न कल्याण के हेतु नहीं

दियंबरत्तं मेत्तं, पिच्छी कमंडलुं च वदहीणस्स।
णेव कल्लाण-हेदू, कहं होज्ज मोक्खमग्गी सो॥61॥

व्रत हीन के मात्र दिगंबर भेष वा पिच्छी-कमंडलु कल्याण के हेतु नहीं है। वे (व्रतहीन) मोक्षमार्गी कैसे हो सकते हैं?

कर्त्तव्य चिंतन

पत्तेयं चिंतेज्जा, साहू सगकत्तव्वं तिसंझासु।
जदि दोसं दिस्संते, तो तं परिहरेज्ज जदणेण॥62॥

प्रत्येक साधु को तीनों संध्याकालों में अपने कर्त्तव्यों का चिंतन करना चाहिए और यदि उनमें दोष दिखायी दें तो यत्नपूर्वक उनका परिहार करना चाहिए।

धर्म घातक

अकरणीयं ण करेज्ज, अकत्थ-वयणं च णेव भासेज्जा।
सागारा अणगारा, होज्ज धम्म-घादगं जम्हा॥63॥

सागार (श्रावक) व अनगार (मुनियों) को अकार्य नहीं करने चाहिए और नहीं बोलने योग्य वचनों को नहीं बोलना चाहिए क्योंकि वे धर्म के घातक होते हैं।

पाप व दु:ख वर्धक

कुचिंतणीयं चिंतदि, अकरणीयं कुणदि अकत्थं कहदि।
जो सो घादेदि स-सुहं, वड्ढदि पावं सवरदुक्खं॥64॥

जो कुचिंतनीय का चिंतन करता है, अकार्य को करता है और नहीं बोलने योग्य बोलता है वह अपने सुख का घात करता है एवं पाप व स्वपर दु:ख को वृद्धिगत करता है।

चैत्य भक्ति

जिणभत्तिं पडुच्च णियदेहं जिणालयं अप्पा जिणं च।
मणित्ता कुणदु भत्तिं, जदि चुअदे तो गुरुभत्तिं हु॥65॥

जिनभक्ति का आश्रय लेकर अपनी देह को जिनालय व आत्मा को जिनदेव मानकर सदैव उसकी भक्ति करनी चाहिए यदि उससे च्युत हो जाए तो गुरुभक्ति करनी चाहिए।

गुरुभक्ति माहात्म्य

गुरुभत्ती णियमादो, भववरसुह-हेदू मुत्तीए पुण।
संपइ रोग-सोग-भय-विणासगा सव्वदुहाणं वि॥66॥

गुरुभक्ति नियम से संसार के उत्कृष्ट सुखों का पुनः मुक्ति का हेतु है। वर्तमान में वह रोग, शोक, भय व सर्व दुःखों का नाश करने वाली है।

स्वाध्याय प्रेरणा

जिणभत्तीए जदि णो, चित्तथिरं तो करेज्ज सज्झायं।
सज्झाओ वर-हेदू, सोहेदुं तिजोगपवत्तिं॥67॥

यदि जिनभक्ति में चित्त स्थिर नहीं हो तो स्वाध्याय करना चाहिए। त्रियोग की प्रवृत्ति को शुद्ध करने के लिए स्वाध्याय उत्कृष्ट हेतु है।

आत्मशुद्धि कैसे?

णाणतवेहिं झाणे, रमंतो सुज्झदि सगप्पं जोगी।
जह तह हु आसणेणं, सुज्झेदि हु कणगपासाणं॥68॥

जिस प्रकार अग्नि के द्वारा कनक पाषाण शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान व तप के द्वारा ध्यान में रमण करता हुआ योगी अपनी आत्मा को शुद्ध करता है।

सद्धर्म रसायन

पारस-संजोगेणं, अयसपिंडो खलु कंचणं जह तह।
सुधम्मरसायणेणं, अप्पा अवि होदि परमप्पा॥69॥

जिस प्रकार पारसमणि के संयोग से लोहे का पिंड स्वर्ण हो जाता है उसी प्रकार सद्धर्म रूपी रसायन से आत्मा भी परमात्मा हो जाती है।

देव-शास्त्र-गुरु व धर्म स्वरूप

रायविवज्जिद-देवो, कुरायहीणमुणी हिंसारहियो।
धम्मो विवाद-हीणं, सत्थं जिणमग्गो हिद-जुदो॥70॥

राग से रहित देव, कुराग से हीन मुनिराज, हिंसा से वर्जित धर्म और विवाद से रहित शास्त्र होते हैं। जो सदैव हित से युक्त है वह जिनमार्ग है।

सिद्ध पद का पात्र

पसत्थझाणजोगेण, अव्वय-णिरंजण-सिद्धपदं लहदि।
सव्व-आरंभ-कसाय-विसय-संग-चागी मुणिंदो॥71॥

सर्व आरंभ, कषाय, विषय और परिग्रह के त्यागी मुनींद्र प्रशस्तध्यान के योग से अव्यय, निरंजन, सिद्धपद प्राप्त करता है।

आत्मध्यान प्रेरणा

तिल्लं व तिलमज्झम्मि, कट्ठे अग्गीव खीरम्मि घिदं व।
सिप्पीए मोत्तिअं व, गब्भवदीए गब्भत्थोव्व॥72॥

देहमज्झे सिवं सय, कणगपासाणम्मि तह हिरण्णं व।
जोगीहि पस्सिदव्वं, तं दु सज्झाणेणं णिच्चं॥73॥ (जुम्मं)

जैसे तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि, दूध में घृत, सीप में मोती, गर्भवती स्त्री में गर्भस्थ शिशु और कनक पाषाण में सोना होता है उसी प्रकार देह मध्य स्थित आत्मा है। उसे योगियों को नित्य ही सद्ध्यान के द्वारा देखना चाहिए।

चिंतेज्ज सव्वविअप्प - वियारदंदपपंचरहिद - अप्पं।
जोगी मोणेण सया, रमेज्ज झाणज्झयणतवेसु॥74॥

योगी को मौनपूर्वक सदैव सर्व विकल्प, विकार, द्वंद व प्रपंचों से रहित आत्मा का चिंतन करना चाहिए और ध्यान, अध्ययन व तप में रत होना चाहिए।

आत्मध्यान की सफलता

सुद्धप्पझाणं विणा, जोगीण जवो तवो तित्थजत्ता।
ववहारकिरिया वि णिप्फला य बहुसिस्साणुयायी॥75॥

शुद्धात्म ध्यान के बिना योगी का जप, तप, तीर्थयात्रा, व्यवहार क्रिया, बहुत शिष्य व अनुयायी सब निष्फल है।

प्रभात कहाँ?

जस्स जोगिस्स चित्ते, रयणत्तयक्क-उदिदो खलु सददं।
तस्स सुणाण-पहादं, सुहसंतिजीमूअविट्टी वि॥76॥

जिस योगी के चित्त में सदैव रत्नत्रय रूपी सूर्य उदय को प्राप्त है उसके ही सम्यग्ज्ञान का प्रभात है एवं सुख-शांति रूपी मेघों की वृष्टि भी है।

योगी का शत्रु

समणचित्ते विज्जंत - रायदोससंजुदवियारभावा।
तस्स सत्तू मण्णेज्ज, णेव कोवि चिअ बहिर-सत्तू॥77॥

श्रमण के चित्त में विद्यमान राग-द्वेष से संयुत विकारी भाव उसके शत्रु माने जाते हैं। उसका कोई भी बाह्य शत्रु नहीं होता।

चिन्ता के दुष्परिणाम

परचिंता सण्णाणं, णस्सेदि वेरग्गं वदं तवं च।
अप्पचिंतणं वड्ढदि, सज्झाण-तव-संजम-पहुडी॥78॥

परचिंता सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, व्रत व तप को नष्ट कर देती है। आत्मचिंतन स्वाध्याय, तप व संयम आदि को वृद्धिंगत करता है।

चिंता वड्ढदि वाहिं, हणदि तणुकंति-विवेग-सुह-संती।
खयेदि पमोदं धिदिं, संवेग-कित्ति-मेत्ति-भत्ती॥79॥

चिंता रोग को बढ़ाती है। वह देह की कांति, विवेक, सुख व शांति का हनन करती है। चिंता प्रमोद, धृति, संवेग, कीर्ति, मैत्री व भक्ति को नष्ट करती है।

भावनाओं का चिन्तन

अणिच्चाइ -अणुवेक्खा, दह - धम्मा संवेगाइ - गुणट्ठा।
दंसणविसोहि-पहुडी, धिदि-पहुडि-पंचं चिंतेज्जा॥80॥

योगियों को अनित्यादि अनुप्रेक्षा, दस धर्म, संवेगादि आठ गुण, दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावना व धृति आदि पाँच भावनाओं का चिंतन करना चाहिए।

कर्त्ता ही भोक्ता

सुहासुहं कम्मं जह, कुव्वेमि तह भुंजेमि णियमादो।
कम्मं खयित्तु अहुणा, लहिस्सामि परमणिव्वाणं॥81॥

शुभ व अशुभ जैसे कर्म करता हूँ नियम से उसी प्रकार का फल भोगता हूँ। अब कर्मों का क्षय कर मैं परमनिर्वाण को प्राप्त करूँगा।

योगाभ्यास

जम-णियमासण-पहुडी, अब्भासेज्ज सया जोगं जोगी।
तिजोग-सुद्धीए जं, चेयणसुद्धी वि णियमादो॥82॥

योगियों को सदा त्रियोग की शुद्धि के लिए यम, नियम, आसन आदि योग का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि तीनों योगों की शुद्धि से चेतना की शुद्धि भी नियम से होती है।

धर्मध्यान में स्थिरता कैसे

भवतणभोयेसु रदो, जो चिंतदि अट्टं रुद्दज्झाणं।
सो होज्ज कहं सक्को, चित्तथिरं कुणिदुं धम्मम्मि॥83॥

जो संसार, शरीर व भोगों में रत है, आर्त्त व रौद्र ध्यान का चिंतन करता है वह धर्म में चित्त स्थिर करने में समर्थ कैसे हो सकता है?

विषकुंभ

णिच्छये लीण-जदीण, पडिक्कमणादी तह विसकुंभोव्व।
जं झाणे णो करेज्ज, विअप्पं सुहासुहवियारं॥84॥

निश्चय में लीन यतियों के लिए प्रतिक्रमण आदि विषकुंभ के समान हैं क्योंकि ध्यान में कोई विकल्प वा शुभाशुभ विचार नहीं करने चाहिए।

धर्मध्यान के हेतु

सण्णाणं वेरग्गं, णिग्गंथं परिसहजओ समत्तं।
कसायमंदत्त - मप्प - विसुद्धी धम्म - झाण - हेदू॥85॥

सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, निर्ग्रन्थता, परीषहजय, समत्वभाव, कषायों की मंदता और आत्मविशुद्धि धर्मध्यान के हेतु हैं।

ध्यान स्थान

बंभठाणे ललाडे, णयणेसु कण्णेसु खंधजुगले य।
हिअये णाहीए भू-जुगंते करेज्ज सुह-झाणं॥86॥

ब्रह्मस्थान, ललाट, दोनों नेत्र, कर्ण, दोनों कंधे, हृदय, नाभि व भौं के अंत पर शुभ ध्यान करना चाहिए।

ग्रंथ का हेतु

कहिदो-लोगुत्तर-वित्ति-गंथो लोगिगवित्ति-णिवत्तीइ।
जोगत्तयसुद्धीए, रयणत्तय - थिरिमाए तहा॥87॥

लौकिक वृत्ति से निवृत्ति के लिए, योगत्रय की शुद्धि के लिए व रत्नत्रय की स्थिरता के लिए यह ''लोगुत्तर-वित्ती'' अर्थात् ''लोकोत्तर वृत्ति'' नामक ग्रंथ कहा गया है।

अंतिम मंगलाचरण

आइरिया संतिपाय-सायर-जयकित्ती देसभूसणं।
वंदे विज्जाणंदं, तिरयणसुद्धीइ तिजोगेहि॥88॥

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी, अध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी एवं सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को रत्नत्रय की शुद्धि के लिए तीनों योगों से वंदना करता हूँ।

विसुद्धीए उसहाइ - वीरंत - सव्वतित्थयरा णमामि।
केवली सुदकेवली, पणभवं छिंदिदुं गणेसा॥89॥

श्री वृषभदेव से आदि लेकर श्री महावीर जिनेन्द्र तक सभी तीर्थकरों, केवली श्रुतकेवली व गणधरों को पाँच प्रकार के संसार का छेद करने के लिए विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथकार की लघुता

लहुबुद्धि-पमादेहिं, जदि किंचिवि गंथम्मि इमे दोसो।
तो सुदधरा सोहेज्ज, जाणिय बालोव्व मे खमंतु॥90॥

लघु बुद्धि व प्रमाद से यदि इस ग्रंथ में किंचित् भी दोष रह गया हो तो श्रुत को धारण करने वाले महान् (श्रुतधर) आचार्य बालक के समान जानकर मुझे क्षमा करें एवं संशोधित करें।

मम परमोवयारि-गुरु-विज्जाणंद-सूरिस्स किवाए य।
लिहिदो गंथिमो मए, सूरि-वसुणंदिणा मोक्खस्स॥91॥

मेरे परमोपकारी आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव की कृपा से यह ग्रंथ मोक्ष प्राप्ति हेतु मुझ आचार्य वसुनंदी द्वारा लिखा गया।

ग्रंथ प्रशस्ति

आदिधाम - जिणभवणे, फरीदाबाद - हरियाणापंते।
सावणसिददहमीए, गुरुवासरम्मि सुहजोगम्मि॥92॥

पदत्थ-गदि-सुगुरु-दव्व-वीरणिव्वाणद्धे चिअ समत्तो।
सवर-हिद-कारगो तह, आणंदवड्ढगो गंथो हु॥93॥ (जुम्मं)

हरियाणा प्रांत में फरीदाबाद में श्री आदिधाम जिनभवन में श्रावक शुक्ल दशमी के दिन गुरुवार, शुभ योग में पदार्थ (9), गति (4), गुरु (5), द्रव्य (2) 'अंकानां वामतो गतिः' से 2549 वीर-निर्वाण संवत् में यह लोकोत्तर वृत्ति नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ। यह ग्रंथ निश्चय से स्व-पर का हित करने वाला व आनंद की वृद्धि करने वाला है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य			
1.	णंदिणंदसुत्तं (नंदीनंद सूत्र)	2.	अज्जसक्किदी (आर्य संस्कृति)
3.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)	4.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
5.	जदि-किदिकम्मं (यति कृतिकर्म)	6.	धम्मसुत्तं (धर्म सूत्र)
7.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	8.	जिणवरथोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	तच्च-सारो (तत्त्व सार)	10.	विज्जावसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)
11.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	12.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13.	रयणकंडो (प्राकृत सूक्ति कोश)	14.	मंगलसुत्तं (मंगलसूत्र)
15.	अट्ठंगजोगो (अष्टांग योग)	16.	णमोयार-महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
17.	विस्सपुज्जो दियंबरो (विश्वपूज्य दिगंबर)	18.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
19.	मूलवण्णो (मूलवर्ण)	20.	विस्सधम्मो (विश्व धर्म)
21.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)	22.	समवसरण-सोहा (समवसरण शोभा)
23.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)	24.	को विवेगी (विवेकी कौन)
25.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	26.	कलाविण्णाणं (कला विज्ञान)
27.	अप्पसत्ती (आत्म-शक्ति)	28.	वयणपमाणत्तं (वचनप्रमाणत्व)
29.	सिरिसीयलणाहचरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)	30.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
31.	असोग रोहिणी चरियं, अशोक रोहिणी चरित्र	32.	खवगराय-सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33.	लोगुत्तर-वित्ती (लोकोत्तर वृत्ति)	34.	पसमभावो (प्रशम भाव)
35.	समणभावो (श्रमण भाव)	36.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)
37.	झाणसारो (ध्यान सार)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	सम्मेदसिहरमाहप्पं, सम्मेद शिखर माहात्म्य	40.	जिणवयण-सारो (जिनवचन सार)
41.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त)	42.	विणयसारो (विनय सार)
43.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	44.	तव-सारो (तपसार)
45.	भाव-सारो (भावसार)	46.	दाण-सारो (दानसार)
47.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	48.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
49.	णाण-सारो (ज्ञानसार)	50.	णीदि-सारो (नीति सार)
51.	धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)	52.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
53.	प्राकृत वाणी भाग-1-2-3-4		

टीका ग्रंथ			
1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र

इंग्लिश साहित्य			
1.	Inspirational Tales	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य			
1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य			
1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9 (सोलहकारण भावना)
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17 (बारह भावना)
31.	चूको मत	32.	जय बजरंगबली
33.	जीवन का सहारा	34.	ठहरो! ऐसे चलो
35.	तैयारी जीत की	36.	दशामृत
37.	धर्म की महिमा	38.	ना मिटना बुरा है न पिटना

39.	नारी का धवल पक्ष	40.	शायद यही सच है
41.	श्रुत निर्झरी	42.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
43.	सीप का मोती (महावीर जयंती)	44.	स्वाति की बूँद

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना			
1.	अक्षरक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना			
1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौंसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (वृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	समवसरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान

11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना		

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चरित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र

31.	रामचरित्र (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (आ. श्री विद्यानंदी जी)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	अध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्रीमद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च-वियारो सारो (सि. च. आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमिचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)

27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री अमितगति जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

संपादित हिंदी साहित्य

1.	अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)		
2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)

9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य			
1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु सुबंधं (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		